Philosophy Today
2021, Vol. 2 | Issue-2
https://philosophytoday.in

कोविड–19 महामारी में जैन जीवन शैली एवं मरण शैली की प्रासंगिकता

डॉ. समणी शषिप्रज्ञा[1]

सांराष

जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पहलू जन्म एवं मरण–दोनों शाश्वत सत्य है। यह जितना यथार्थ है उतना ही इन दोनों छोरों के बीच का जीवन भी एक वास्तविक सच्चाई हैं। आज की ज्वलन्त अपेक्षा है कि जैन जीवन शैली एवं जैन संलेखनापूर्ण मरण शैली को जनव्यापि रूप दिया जाएं। प्रस्तुत आलेख दो भागों में विभक्त किया गया है जिस में युगीन कोरोना महामारी में जिनागम का नवनीत जैनाचार प्रधान जीवनशैली किस प्रकार विश्व को एक नई दिशा प्रदान कर सकती है एवं कोरोना व्याधिग्रस्त व्यक्ति किस प्रकार जैनाचार्यों द्वारा प्रेषित अनेकांतिक दृष्टि, अणुव्रत आचार संहिता एवं संलेखना प्रधान समाधिमरण विधि को अपनाकर इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सफल बना सकता है। जैन सम्मत कोरोना परिस्थिति प्रबन्धन के सूत्रों का दिग्दर्शन पाकर किस प्रकार वह आत्मोत्थान के साथ–साथ समाजोत्थान के पथ पर वैयक्तिक शांति के साथ वैश्विक शांति की स्थापना में अपनी महत्त्वपूण भूमिका अदा कर सकता है। उपर्युक्त विषयों पर प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास किया गया है।

[1] एसोसिएट प्रोफेसर, जैन दर्शन तथा तुलनात्मक धर्म एवं दर्शन विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति स्व–दृष्टि से संचालित होती है। स्व–दृष्टिकोण (Self-perepective) का निर्माण व्यक्ति अपने परिवेश, शिक्षण विधियों, पारिवारिक परवरिश, मित्र मंडली, संचार–साधनों के माध्यम से अर्जित करता है। जिस प्रकार पाश्चात्य दार्शनिक इमानुअल काण्ट के अनुसार देश–काल रूपी चश्मे से हम संसार की प्रत्येक वस्तु का बोध करते हैं,[2] उसी प्रकार जैन दृष्टि से हमारी हर प्रवृत्ति रागद्वेष रूपी चश्मे से होकर कार्य रूप में परिणत होती हैं। आज के युगीन कोराना महामारी को जैनी जीवन–शैली एवं मरण शैली के आलोक में देखा और समझा जाएं। प्रस्तुत आलेख को दो भागों में विभक्त किया गया है। जिसके प्रथम भाग में वर्तमान कोराना संकट काल में जैन सिद्धांतों की भूमिका एवं युगीन प्रासंगिकता को उजागर किया जायेगा। इसके द्वितीय भाग में कोरोना संक्रमित व्यक्ति भावधारा को प्रशस्त रखते हुए जैनाचार्यों द्वारा प्रदर्शित परिस्थिति प्रबन्धन के सूत्रों को एवं जैनों की संलेखनापूर्वक मरणविधि को अपनाकर किस प्रकार समाधिपूर्वक इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सफल बना सकता है। जैन धर्म की आत्मा है–अहिंसा। संपूर्ण आचार जगत् की मीमांसा इसी अहिंसा सिद्धांत पर टिकी हुई है। वर्तमान संकट उसी अहिंसा सिद्धांत की विस्मृति की फलश्रुति हैं। जैनदर्शन की आत्मा–'सव्वभूयखेमंकरी अहिंसा'[3] रूपी जीवनमूल्य को नजरअंदाज करने के कारण आज हम इस वैश्विक कोरोना महामारी की विकट परिस्थिति से गुजर रहे हैं। सर्वप्रथम शाकाहार प्रधान अहिंसक जैनी जीवन शैली का कोरोना संकट में भूमिका को उजागर किया जायेगा।

भाग–1

जैन जीवन शैली का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–आहार–शुद्धि एवं व्यसन मुक्ति।[4] आज के इस दौर में नितान्त अपेक्षा है कि हम कोरोना महामारी में खान–पान की शुद्धि की ओर दृष्टिपात करें। कोरोना चाहे चमगादड़ आदि के मांस–भक्षण से, मांसाहार सेवन से या कोई घातक वायरस के संक्रमण आदि जिस किसी कारण से उत्पन्न हुआ हो हमें अपनी जीवन शैली, रहन–सहन, खान–पान पद्धति, भोग–परिभोग, सुख–सुविधा के संसाधनों के प्रयोगों पर पुनर्विचार करना होगा। समग्र दृष्टिकोण को मदेनजर रखकर वर्तमान स्थिति का जब अवलोकन करते हैं तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भगवान महावीर कालीन जीवन शैली कोरोना संकट के बहाने जीवन्त हो उठी है। चाहे वह घर के अन्दर का एकान्तवास हो सामाजिक/शारीरिक दूरी हो, मास्क धारण करना हो, यात्रा से सम्बन्धित प्रतिबन्ध हो या खानपान से सम्बन्धित अनुशासन हो, इत्यादि सभी बातों ने स्वतः जैन जीवन पद्धति को जीवन का अंग बना दिया है। आज की ज्वलन्त अपेक्षा है हम जैन–जीवन– शैली का जो महत्त्वपूर्ण अंग–आहार शुद्धि एवं व्यसन मुक्ति को जनव्यापि रूप दें एवं संपूर्ण विश्व को शाकाहार की महत्ता से अवगत कराएं। संपूर्ण विश्व में मांसाहार भक्षण से अनेक जीवों की प्रजातियां नष्ट हो चुकी है एवं कुछ जैविक प्रजातियां नष्ट होने के कगार पर हैं। जैन कर्मसिद्धांत की दृष्टि से देखा जाये तो मांसाहार हेतु मूक पंचेन्द्रिय प्राणियों की हिंसा का दुष्परिणाम व्यक्ति को स्वयं भोगना पड़ता है, जो आज सर्व विदित प्रत्यक्ष है। संपूर्ण शाकाहार का निर्धारण जैन जीवन पद्धति की एक प्रमुख और अनूठी विशेषता है। यह बौद्धिक रूप से जानने का विषय है कि शरीर रूपी मंदिर की पवित्रता को कायम रखने के लिए, व्यक्ति को क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, जिससे उसमें निवास करने वाली अंखड, अरुज, शाश्वत, पवित्र, शुद्ध आत्मा कलुषित न हो एवं सद्भाव के साथ रह सके। स्वस्थ और संन्तुलित जीवन जीने के लिए आहारशुद्धि आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में वृद्धि के लिए आहार–शुद्धि की विशिष्ट भूमिका है। संवेगों के नियंत्रित रखने के लिए, अपराधों से बचने के लिए आहारशुद्धि एवं मद्य–मांस आदि व्यसन मुक्ति भी जरूरी है।[5] केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं पारिवारिक और सामाजिक स्वस्थता के लिए भी आहार शुद्धि एवं व्यसन–मुक्ति के सिद्धांत पर विचार करना आवश्यक लगता है।

शाकाहार बनाम संपूर्ण आरोग्य

शाकाहार जीवन के प्रति एक संवेदनशीलता है। शाकाहार कर्म बंधन को कम करने का एक सचेत प्रयास है। कर्म का उत्तम

[2] Y. Masih, *History of Western Philosophy*, MBD : New Delhi, 1994, P.344.

[3] प्रश्नव्याकरण सूत्र, 6/4–5.

[4] आचार्य तुलसी, श्रावक संबोध, लाडनूं : जैन विश्व भारती, 2016 पृ. 129.

[5] आचार्य महाप्रज्ञ, पहचान जैन श्रावक की, लाडनूं : जैन विश्व भारती, 2014, पृ. 173.

नियम और अहिंसा का सिद्धांत वास्तव में शाकाहार के लिए एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। शाकाहारी भोजन जैसे–फल, सब्जियां, अनाज, मैवे आदि मानव शरीर में प्रकाश, ऊर्जा एवं जीवन शक्ति प्रदान करते हैं, क्योंकि वह एक जीवित पौधा बनाता है। प्राकृतिक खाद्य पदार्थों का चयन प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और स्वास्थ्य को ठीक करने और बनाए रखने में मदद करता है। सामान्य और आग्रही धारणा है कि शक्ति के लिए मांस खाना चाहिए, वास्तव में इसकी कोई नींव नहीं है, वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। शाकाहारी भोजन सबसे ज्यादा प्रोटीन आदि से भरपूर, लाभदायक स्फूर्तिदायक एवं स्वास्थ्यप्रद है। हमारी शारीरिक बनावट भी शाकाहार के अनुरूप हुई है। शाकाहारी आहार शरीर में कम संतृप्त वसा और एन्टीऑक्सीडेन्ट प्रदान करते हैं, मोटापे को दूर करने में फायदेमन्द एवं दुबले शरीर की संरचना को बढ़ावा देते हैं और मांस खाने वालों की तुलना में शरीर में कम कार्सिनोजेन्स का उत्पादन करते हैं। विज्ञान ने भी शाकाहारी भोजन के स्वास्थ्य लाभों की सिफारिश की है। शोध के परिणामों ने संतुलित एवं नियोजित शाकाहारी भोजन करने वालों में हृदय रोग में 50 प्रतिशत की कमी और लम्बे जीवन प्रत्याशा भी दर्ज की है। बीफ में दूध से छह गुना कोलेस्ट्रोल होता है। पशु प्रोटीन के स्थान पर वनस्पति प्रोटीन का सेवन रक्त में कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम करता है एवं हृदय संबंधी तथा स्वास्थ्य संबंधी अन्य लाभ भी प्रदान करता है।[6] अब हम कोरोना काल में अणुव्रत आचार संहिता प्रधान जीवन शैली की भूमिका पर प्रकाश डालेंगे।

COVID-19 में अणुव्रत आचार संहिता की भूमिका

जैन आगम में हर गृहस्थ के लिए पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रत का प्रावधान कर भगवान महावीर एक ने स्वस्थ, शान्त, समृद्ध एवं अहिंसक समाजसंरचना का सूत्र हाथों में थमा दिया। पांच अणुव्रत, जो जैन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित है–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार–संतोष एवं इच्छा परिमाण–ये पांचों व्रत न केवल आत्मकल्याण के लिए उपयोगी है अपितु समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। यहां प्रसंगानुसार बारह अणुव्रतों में तीन गुणव्रतों दिशा परिमाण व्रत, भोगोपभोग परिमाण व्रत एवं अनर्थदण्ड व्रत पर वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में सामाजिक प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला जायेगा।

पांच अणुव्रत के बाद श्रावक के तीन गुणव्रत–दिगव्रत भोगोपभोग व्रत एवं अनर्थ दण्ड व्रत बतलाए गए है। जिस प्रकार तम्बू तानने के लिए जमीन में कुछ खूंटिया गाड़नी पड़ती हैं। खूंटियों के आलम्बन बिना तम्बू टिक नहीं सकता। उसी प्रकार इच्छा परिमाण एक तम्बू है। उसे टिकाने के लिए तीन खूंटियों की अनिवार्यता है। इन तीन व्रतों या नियमों को स्वीकार किए बिना इच्छाओं को सीमित करने का संकल्प फलित नहीं हो सकता।[7]

दिग्परिमाणव्रत–साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के दो रूप हैं–क्षेत्र–विस्तार और व्यापार विस्तार। प्राचीन काल में क्षेत्रीय उपनिवेश वाद का प्रचलन था। आज उसका स्थान व्यावसायिक उपनिवेशवाद ने ले लिया है। वर्तमान परिस्थितियों में सामान्यतः कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर सीधा अधिकार करना नहीं चाहता। किन्तु व्यापार पर अपना कब्जा करने के अवसर खोजता रहता है। बहु उद्देशीय कम्पनियों की घुस पैठ भी आर्थिक साम्राज्य स्थापित करने के लक्ष्य से हो रही है, ऐसा माना जाता है। किसी भी राष्ट्र में व्यावसायिक प्रभुत्व के विस्तार को रोकने में दिगव्रत एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[8] दिग् परिमाण व्रत स्वीकार करने वाला अपने अर्थोपार्जन एवं विषय भोग का सीमा क्षेत्र छहों अथवा चारों दिशाओं में निर्धारित करता है। जिसके फलस्वरूप अर्थलोलुपता एवं विषयतृष्णा की पूर्ति हेतु देश–विदेश में भटकन की मनोवृत्ति पर स्वतः नियंत्रण स्थापित हो जाता है। यद्यपि वर्तमान तीव्र संचार तकनीकी के युग में कहा जा सकता है कि इस प्रकार के व्रत की क्या प्रासंगिकता हो सकती है। पर इस व्रत के द्वारा अनियंत्रित आकांक्षाओं पर अंकुश लगता है, स्वदेश प्रेम एवं स्वावलम्बन का विकास होता है, अनावश्यक हिंसा एवं परिग्रह पर स्वतः नियंत्रण हो जाता है। इस कोरोना काल में Lockdown के दौरान सरकार द्वारा यातायात नियंत्रण से स्वतः वाहनों से उठने वाले वायु प्रदूषण, ध्वनि

[6] यू. एस दूगड़–महावीर का जीवन विज्ञान, दिल्ली : राजदीप पब्लिशर्स, 2019, पृ. 16.

[7] आचार्य महाप्रज्ञ, पहचान जैन श्रावक की पृ. 112.

[8] Acharya Mahapragya, Who is a Jain Shravak, p. 188.

प्रदूषण, जल प्रदूषण इत्यादि को नियंत्रण रेखा के भीतर दर्ज किया गया। महानगरों में प्राकृतिक सन्तुलन एवं पर्यावरण सरंक्षण की दृष्टि से दिशा परिमाण व्रत की महत्ता स्वतः उजागर हो गई। इस व्रत से निर्धारित क्षेत्र से बाहर यातायात की सीमा करने से उन क्षेत्रों में होने वाले समस्त आरम्भ–समारंभ के पाप से न केवल व्यक्ति बचता है अपितु सन्तोष वृत्ति का विकास करता है, जो सुखी जीवन का आधारसूत्र है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रत– श्रावक के व्यक्तिगत जीवन में स्वेच्छा से भोगोपभोग वृत्ति पर अंकुश लगाना ही इस व्रत का मूल उद्देश्य है। आज के भोगवादी संस्कृति के युग में इस व्रत की उपयोगिता को कोई विचारशील व्यक्ति अस्वीकार नहीं करेगा। आज भोगोपभोग सामग्री की जितनी विधाएं विकसित हुई है, उस भूल–भूलैया में व्यक्ति बाजार में जाने के बाद जेब खाली किए बिना नहीं लौट पाता है। छोटी से छोटी साबुन से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तुओं की इतनी विविधताएं है कि व्यक्ति का दिमाग चकरा जाता है क्या खरीदे और क्या न खरीदे? आनन्द श्रावक ने किस प्रकार विलेपन, हस्त प्रोच्छन, मुखवास जैसी छोटी–छोटी वस्तुओं का संयम कर स्वाद वृत्ति, आसक्ति एवं उच्छृंखल भोग पर अंकुश लगाया। इस व्रत से स्वादवृत्ति के कारण बढ़ने वाली बीमारियों पर रोकथाम संभव हुई है, अनावश्यक धारण करने के वस्त्र, सौन्दर्य प्रधान प्रसाधन सामग्री, कोराना काल में वस्त्रों की खरीददारी, दैनन्दिन प्रयोग में आने वाली नई साधन–सामग्री इत्यादि सारी सुविधाजनक सामग्री के संग्रह एवं आसक्ति पर नियंत्रण हुआ एवं अभावग्रस्त को पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हुई है।

जैन आचार्यों ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक तरीके से यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया कि गृहस्थ को समाज में जीने के लिए आजीविका का उपार्जन अनिवार्य है। पर जिस व्यवसाय में महाहिंसा होती है जिन्हें 15 कर्मादान के नाम से जाना जाता है, वैसे व्यवसाय से आजीविका अर्जित करना निषिद्ध माना गया है।[9] 15 महाहिंसात्मक व्यवसायों का निषेध वास्तव में आज के संदर्भ में देखा जाय तो बड़ा प्रासंगिक प्रतीत होता है। उसकी वर्तमान युग में किस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से निजात पाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है उसका विश्लेषण किया जा रहा है। प्रथम कर्मादान–वन कर्म अर्थात् जंगल कटवाने का व्यवसाय, दूसरे अंगार कर्म में अग्नि प्रज्ज्वलित करके किये जाने वाले सारे व्यवसायों को निषेध किया गया है। आज बड़े–बड़े कारखानों में महाहिंसा के साथ–साथ निकलने वाले धूएं से जिस प्रकार शहरों में वायु प्रदूषण बढ़ रहा है एवं ओजोन की छत में भी छेद बढ़ता जा रहा है। कोरोना काल में बड़े–बड़े कारखानों के बंद रखने से उनसे उठने वाले धूंए आदि के अभाव में जहां वायु प्रदूषण, जल एवं ध्वनि प्रदूषण की समस्या का स्वतः समाधान हुआ है वहीं पर प्रकृति के प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, अनावश्यक जीव हिंसा का परिहार एवं भोगोपभोग संयम भी हुआ है। फर्नीचर निर्माण हेतु, घरेलु साज–सज्जा के लिए जंगलों की कटाई जिस कदर से हो रही है यह अनुमान लगाया जा रहा है कि भविष्य में वर्षा का स्रोत सूख जाने से तीसरा विश्व युद्ध पानी के लिए ही होगा। साथ ही दन्त, रस, विष, केश एवं यन्त्र पीड़न आदि निषिद्ध व्यवसायों में धनार्जन के लिए जिस क्रूरतापूर्ण बर्बर तरीके से पशुओं का कत्ल मानव स्वास्थ्य हेतु एवं मानव स्वास्थ्य हेतु पशुओं पर परीक्षण किया जा रहा है, वह निश्चित ही मानव जाति के लिए महाकंलक है।[10] अनेक प्रजातियां प्राणियों की आज विलुप्त हो चुकी है एवं अनेक विलुप्ति के कगार पर है। भगवान महावीर ने ठीक ही कहा कि जो षड्जीवनिकाय के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व को ही अस्वीकार करता है।[11] परस्पर सभी जीव अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर निर्भर है। आचार्य उमास्वाती के 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस अन्त र्निभरता के सूत्र को विस्मृत करने के कारण ही आज स्वयं मानव अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। इसीलिए आजकल Human Survival की बात पर गंभीरता से विचार–विमर्श एवं मानव अस्तित्व की सुरक्षा हेतु पर्यावरण प्रदूषण पर सरकार द्वारा रोकथाम के विविध आयाम अपनाए जा रहे हैं, पर जब तक मानव का स्वनियंत्रण काम नहीं करेगा, मात्र बाह्य नियंत्रण से वांच्छित परिणाम की आशा करना अशक्य है। इस प्रकार आज भोगोपभोग व्रत की प्रासंगिकता हस्ताम्लकवत् स्वतः सिद्ध है।

[9] उपासकदशांगसूत्रए 1/47, आचार्य हेमचन्द्र, योगशास्त्र, 3/100–101.

[10] Samani Shashi Prajna, Social Implication of Jain Doctrines I, p. 167.

[11] आचारांग सूत्र, 1.55.5

अनर्थदण्डविरमण व्रत– अनावश्यक निष्प्रयोजन हिंसा का परित्याग करना अनर्थदण्डव्रत है। मानव अपने जीवन में ऐसे अनेक कर्म करता है जिसके फल स्वरूप उसका अपना कोई हित साधन नहीं होता। इस निष्प्रयोजन, अनावश्यक कर्म का यहां निषेध किया गया है, आजीविका चलाने के लिए जो पापकारी प्रवृत्ति द्वारा हिंसा करनी पड़ती है वह यहां अर्थदण्ड है और निष्प्रयोजन ही केवल प्रमाद, कुतूहल, अविवेक, अज्ञानता के वशीभूत होकर चलते हुए अनावश्यक पत्तियों को तोड़ना, अपने मनोरंजन के लिए मुर्गे, अश्व, बैल आदि में लड़वाना अनावश्यक हिंसा अथवा अनर्थदण्ड है।

आचार्य समन्तभद्र ने तो इतनी सूक्ष्मता से इस व्रत को रत्नकरण्ड श्रावकाचार में वर्णित किया है। निरर्थक जमीन खोदना, अग्नि प्रज्ज्वलित करना, पंखा एवं कूलर चलाना, वनस्पति का छेदन–भेदन करना (फल एवं हरियाली पत्तीदार वनस्पति आदि जीवों की विवाह आदि में विविध आकृति बनाना), पानी का दुरूपयोग (स्नान, हाथ धोने में एवं बर्तन एवं वस्त्र प्रक्षालन में), घी, तेल, दूध आदि के बर्तन खुले रख देना (जिसमें जीवों के गिर जाने से अनावश्यक प्राणिघात के भागीदार बनते हों) लकड़ी, पानी आदि को बिना देख–भाल के काम में लेना–ये सभी प्रमाद से उत्पन्न हिंसा है, जो आज की आधुनिक जीवन शैली के अंग बन चुके हैं। इस व्रत के माध्यम से महावीर ने संपूर्ण जीवन शैली को संयमित करने का प्रयास किया है। इससे न केवल स्वयं का निष्प्रयोजन पाप से बचाव होता है अपितु जागृत मानवीय व्यवहार का विकास होता है एवं संयम चेतना के विकास से अभाव ग्रस्त को उचित सामग्री उपलब्ध होती है। इसी व्रत के अन्तर्गत गृहस्थ से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अशुभचिन्तन, पापकर्मोपदेश, हिंसक उपकरणों के दान एवं उपरोक्त प्रमादाचरण से बचे। श्रावक के उपर्युक्त पांच अणुव्रतों एवं तीन गुणव्रतों का बहुत कुछ सम्बन्ध हमारे सामाजिक जीवन से हैं। मानव समाज में आज भी ये सभी चारित्रिक विकृतियां विद्यमान हैं और एक सभ्य समाज के निर्माण के लिए इनका परिमार्जन आवश्यक एवं अति प्रासंगिक हैं।

गृहस्थ पर अपने परिजनों के उदर पोषण के दायित्व के साथ–साथ साधक एवं समाज के असहाय एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों के भरण–पोषण का दायित्व भी है। हमारा जीवन पास्परिक सहयोग एवं सहभागिता के आधार पर ही चलता है। कोरोना संकट काल में दूसरों के सुख–दुःख मे सहभागी बनना एवं अभावग्रस्त पीड़ितों एवं दीन–दुखियों का तन–मन–धन से सहयोग करना भी गृहस्थ का अनिवार्य धर्म है। इस महामारी में मानव में करूणा की चेतना का, जागरण हुआ एवं अनावश्यक हिंसा के दुष्परिणामों के प्रति भी सजगता आई है। इस व्रत से गृहस्थ में समाज सेवा, दान चेतना एवं अर्जन के साथ विसर्जन की चेतना का जागरण होता है एवं साथ ही अनासक्ति का विकास होने से आत्मोत्थान होता है एवं समाज में समरसता, सामाजिक सम्बन्धो में मधुरता एवं साधार्मिक वात्सल्य का विकास होता है।

निष्कर्षतः जैन धर्म के श्रावक आचार की उपर्युक्त समीक्षा करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि जैन श्रावकों के लिए प्रतिपादित आचार के नियम हर देश–काल, हर व्यक्ति एवं हर समाज में वर्तमान युग में भी प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि जैन आचार की सार्वभौमिक प्रासंगिकता महावीर के युग में भी थी, आज भी है एवं भविष्य में भी रहेगी । श्रावक के 12 व्रत की अनुपालना न केवल जैन नागरिक के लिए आवश्यक है, अपितु संपूर्ण मानव जाति एवं राष्ट्र हित में है। जैनों में मान्य श्रावक के बारह व्रतों के अन्तर्गत दिशा–परिमाण व्रत, अनर्थदण्ड व्रत, भोगोपभोग परिमाण व्रत का इस कोरोना संकट काल में मानों स्वतः अनुपालन हो गया। आगे भी इन व्रतों का परिपालन कर यात्रा संयम द्वारा अपनी इच्छाओं को संयमित किया जा सकता है। परिग्रह संचय पर विचार करें तो इच्छा परिणाम व्रत से परिग्रह–परिमाण की दिशा में प्रस्थान शनैः–शनैः आत्म–शान्ति एवं आत्मविकास का मार्गप्रशस्त करेगा। इस विषम परिस्थिति में स्पर्शसंयम, ब्रह्मचर्य व्रत, अहिंसा व्रत, इच्छा परिमाण व्रत, दिग्व्रत, इत्यादि व्रतों की महत्ती प्रासंगिकता है। जैन परंपरा में गृहस्थ आचार संहिता के अन्तर्गत जैन मरण शैली को भी उजागर किया गया है। अब क्रमशः परिस्थिति प्रबंधन के सूत्रों के साथ–साथ कोरोना संकट में संलेखनापूर्ण मरण की महत्ता को लेख के द्वितीय भाग में उजागर किया जा रहा है।

भाग–2

जैन धर्म–दर्षन में मरने की कला

यह सर्व जग विहित है कि इस कोरोना महामारी ने संपूर्ण विश्व की मानव सभ्यता एवं मानव संस्कृति को झकझोर कर रख दिया। शिक्षा

जगत् से लेकर व्यावसायिक जगत् की समस्त गतिविधि अस्त–व्यस्त हो गई है। धार्मिक पर्वों से लेकर लौकिक त्यौहार, विवाह परंपराजनित रीति–रिवाज, अन्य धार्मिक परिषद् में धर्मश्रवण, सार्वजनिक मिलन इत्यादि से जहां आपसी सौहार्द, पारस्परिक प्रेम, भाई–चारा, इत्यादि मानवीय गुणों को प्रोत्साहन मिलता एवं जन–जीवन में सरसता बढ़ती है, वहां इस कोरोना महामारी ने भारतीय संस्कृति एवं संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के ढांचे को तहस–नहस कर डाला हैं। संपूर्ण विश्व में लगभग 26 लाख से अधिक मौतें हुई हैं। इस महामारी में जिन–जिन परिवारों ने अपने स्वजन, संगे–संबंधियों की दर्दनाक मौत से अपनों को खोया है, उन आबालवृद्धों की अब स्मृति मात्र शेष रह गई है। पारिवारिक जन में एक धार्मिक जागरूकता पैदा हुई है कि सारे स्वजन बन्धुओं का संयोग क्षणभंगुर है। 'इमं सरीरं अणिच्चं'[12]– इस सत्य का बोध हुआ है एवं मानसिक सन्तुलन का विकास हुआ है।

इस दौरान मृत्यु के क्षण में कौन–कौन सी एवं कैसी सजगता रखनी चाहिए। पारिवारिक स्वजन एवं कोविड–19 से ग्रस्त ऐसा मरीज या पारिवारिक स्वजन जिसके उपचार में चिकित्सक अशक्त हो, मृत्यु अवश्यम्भावी हो, उसे संपूर्ण जैन मरणविधि को आद्योपान्त समझाकर उसके मरण को आर्त्त ध्यान से धर्म ध्यान में लगाकर शांतिपूर्ण संलेखनापूर्वक मृत्यु द्वारा एक गरिमामयी मृत्यु के लिए प्रात्साहित किया जाना चाहिए। तो अब संक्षेप में संलेखना की परिभाषा, महत्ता, विधि एवं उसके फल पर प्रकाश डाला जा रहा है।

संलेखना का स्वरूप

'जन्म से पहले और मृत्यु के बाद' इस विषय पर मतभेद हो सकते हैं, क्योंकि यह विषय प्रत्यक्ष नहीं है। यह सारा विषय अनुमान और श्रद्धा का है। किन्तु जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। इस विषय पर दुनिया के किसी भी व्यक्तित्व का कोई मतभेद नहीं है। अतः मृत्यु की अनादिनिधनता, सार्वभौमिकता और असांप्रदायिक्ता स्वतः सिद्ध है। यह सत्य तथ्य है कि जीवन के साथ मृत्यु का अवश्यंभावी सम्बन्ध है। जीवन के अलग–बगल चारों ओर मृत्यु का साम्राज्य है। मृत्यु का अखण्ड साम्राज्य होने पर भी मानव उसे भुलाने का प्रयास करता रहा है। वह सोचता है कि मैं कभी नहीं मरूंगा किन्तु यह एक ज्वलन्त सत्य है कि जो पुष्प खिलता है, महकता है, अपनी मधुर सौरभ से जन–जन के मन को मुग्ध करता है वह पुष्प एक दिन मुरझा जाता है। अतः जीवन के पश्चात् मृत्यु निश्चित है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने जीने की कला सिखाने का प्रयास किया है। जीवन शैली की समग्र चर्चा का सम्बन्ध जीने की कला के साथ है। जीवन कैसे जीना चाहिए? इस विषय पर कार्यशालाओं और सेमीनारों के माध्यम से विशद परिचर्चाएं आयोजित हो रही हैं, पर मरने की भी कोई कला होती है, इस बारे में सब मौन हैं। भगवान महावीर ने जीने की कला सिखाई, उसी तरह मरने की कला का भी बोध दिया। संलेखनापूर्वक समाधिमरण का वरण वही कर सकता है, जो मरने की कला सीख चुका होता है। श्रावक और साधु की आचार संहिता में दोनों कलाओं का समावेश है। बारह व्रतों की आराधना एवं महाव्रतों की आराधना जीने की कला है और संलेखनापूर्वक जीवन–यात्रा का समापन मरने की कला है।

संलेखना को परिभाषित करते हुए कहा गया हैं कि–**सम्यक्कायकषायलेखना सल्लेखना।** अर्थात् अच्छी प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश करना संलेखना है। बाहरी शरीर का और भीतरी कषायों को उत्तरोत्तर कृश करते हुए और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को घटाते हुए सम्यक् प्रकार से लेखन अर्थात् कृश करना संलेखना है। जैन दृष्टि से काय और कषाय को कर्मबन्धन का मूल कारण माना है, इसीलिए उसे कृश करना ही संलेखना है। संलेखना काय (शरीर) और कषाय के कृशीकरण की अनुपम साधना है। जैसे किसान अच्छी फसल की प्राप्ति हेतु बीज बोने से पूर्व खेत में हल द्वारा जुताई करके जमीन को पोली करता है, वैसे ही संलेखना भी कृशीकरण की प्रक्रिया है। अतः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय, तप, त्याग और संयमादि गुणों के द्वारा चिरकाल तक आत्मा को भावित करने के बाद, आयु के अंत में अनशनादि विशेष तपों के द्वारा शरीर को और श्रुतरूपी अमृत के आधार पर आत्मा पर लगे कषायों को कृश करने की प्रक्रिया को संलेखना कहा गया है।

भारतीय मूर्धन्य चिन्तकों ने जीवन को एक कला कहा है तो मृत्यु को भी एक कला माना है। जो साधक जीवन और मरण–इन दोनों

[12] उत्तराध्ययन सूत्र, 19/12.

कलाओं में पारंगत है, वही अमर कलाकार है। भारतीय संस्कृति का घोष है कि जीवन और मरण का खेल अनन्त काल से चल रहा है। तुम खिलाड़ी बनकर खेल रहे हो। जीवन के खेल को कलात्मक ढ़ंग से खेलते हो तो मरने के खेल को भी ठाठ से खेलो। न जीवन से झिझको, न मरण से डरो। जिस प्रकार चालक को मोटर गाड़ी चलाना सीखना आवश्यक है, उसी तरह उसे रोकना सीखना भी आवश्यक है। केवल उसे गाड़ी चलाना आये, रोकना नहीं आये, उस चालक की स्थिति गंभीर हो जाएगी। इसी तरह जीवन–कला को जानने के साथ मृत्यु–कला भी बहुत आवश्यक है। जिस साधक ने मृत्युकला का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया है, वह हंसते, मुस्कराते, शान्ति के साथ प्राणों का परित्याग करेगा।

संलेखना ग्रहण करने की अर्हता

मूलाराधना में संलेखना संथारा स्वीकार करने के अधिकारी का वर्णन है। कौन व्यक्ति एवं कब इसे स्वीकार करें? इसका विधान है। इसके अधिकारी वे होते हैं–

1. जो दुश्चिकित्स्य व्याधि (Advance Stage of Corona/ Cancer हो संयम को छोड़ बिना जिसका प्रतिकार करना संभव न हो) से पीड़ित हो।
2. जो श्रामण्य–योग की हानि करने वाली जरा से अभिभूत हो।
3. जो देव, मनुष्य या तिर्यंच संबंधी उपसर्गों से पीड़ित हो।
4. जिसे चारित्र–विनाश के लिये अनुकूल उपसर्ग दिये जा रहे हो।
5. दुष्काल में जिसे शुद्ध भिक्षा न मिले।
6. जो गहन अटवी में दिग्मूढ़ हो जाये और मार्ग हाथ न लगे।
7. जिसके चक्षु और श्रोत दुर्बल तथा जंघाबल क्षीण हो जाये और जो विहार करने में समर्थ न हो। इन जैसे अन्य कारण उपस्थित होने पर व्यक्ति अनशन का अधिकारी होता है।

श्रावक को इस बात का विचार सदैव करना चाहिए कि मैं अपने मरण–समय में अवश्य संलेखना धारण करूंगा, क्योंकि मरण–समय में प्रायः मनुष्यों के परिणाम बहुत क्लेशपूर्ण हो जाते हैं तथा कुटुंबीजनों व धनादि से ममत्व भाव नहीं छूट पाता। जिसका ममत्व भाव छूट जाता है, उसी के संलेखना होती है। ममत्वभाव छूटने से पाप का बन्ध न होने के कारण नरकादि गति का बंध भी नहीं होता, इसलिए मरण–समय में अवश्य ही संलेखना करने के भाव रखना चाहिए। अंत समय में की गई आराधना से चिरकाल तक किये हुए सम्यक् व्रत, नियमरूप से सफल हो जाते है और क्षणमात्र में दीर्घ काल से संचित पाप का नाश हो जाता है। यदि अंत समय में मरण बिगड़ जाए अर्थात् असंयमपूर्वक मृत्यु हो जाए तो जीवनपर्यंत की की हुई धर्माराधना फलीभूत होने से वंचित रह जाती है।

संलेखना ग्रहण की विधि

संल्लेखना की विधि के बारें में आचारांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती आराधना, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, मूलाराधना, मूलाचार इत्यादि ग्रंथों में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। संलेखना काला में कषायों को नष्ट करने का उपाय बताते हुए कहा गया है कि साधक को सर्वप्रथम अपने कुटुम्बियों, परिजनों एवं मित्रों से मोह, अपने शत्रुओं से वैर तथा सब प्रकार के बाह्य पदार्थों से ममत्व का शुद्ध मन से त्यागकर, इष्टवचनों के साथ अपने स्वजनों और परिजनों से क्षमायाचना करनी चाहिए तथा अपनी ओर से भी उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। उसके बाद किसी योग्य गुरु (निर्यापकाचार्य) के पास जाकर कृत, कारित, अनुमोदन से किये गये सब प्रकार के पापों की छलरहित आलोचना कर मरणपर्यन्त के लिए महाव्रतों को धारण करना चाहिए। उसके साथ ही सब प्रकार के शोक, भय, सन्ताप, खेद, विषाद, कालुष्य, अरति आदि अशुभ भावों को त्यागकर अपने बल, वीर्य, साहस और उत्साह को बढ़ाते हुए, गुरुओं के द्वारा सुनाई जाने वाली अमृतवाणी से अपने मन को प्रसन्न रखना चाहिए।

इस प्रकार ज्ञानपूर्वक कषायों को कृश करने के साथ अपनी काया को कृश करने के हेतु सर्वप्रथम स्थूल, ठोस आहार दाल–भात, रोटी आदि का त्याग करना चाहिए तथा दुग्ध, छाछ आदि पेय पदार्थों पर निर्भर रहने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। धीरे–धीरे जब दूध, छाछ आदि पर रहने का अभ्यास हो जाए, तब उनका भी त्याग कर मात्र गर्म जल ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार चित्त की स्थिरतपूर्वक अपने उक्त अभ्यास और शक्ति को बढ़ाकर, धीरजपूर्वक, अन्त में जल का भी त्याग कर देना चाहिए और व्रतों का निरतिचार पालन करते हुए पंच नमस्कार मन्त्र के स्मरण के साथ शान्तिपूर्वक देह का त्याग करना चाहिए।

संलेखना की अवधि में अवश्य करणीय आराधना

भगवती आराधना के कर्ता आचार्य शिवार्य के शब्दों में 'संलेखना के लिए वही तप या उसका वही क्रम अंगीकार करना चाहिए, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और शरीर धातु के अनुकूल हो, क्योंकि सामान्यतः संलेखना का जो क्रम बतलाया गया है, वही क्रम रहे–ऐसे एकान्त नियम से साधक को प्रतिबद्धता हो सकती है। अतः जिस प्रकार शरीर का क्रमशः संलेखना (तनूकरण) हो, वही प्रकार अंगीकार करना उचित है। संलेखना के समय योग्य गुरु, आचार्य और संघ आदि के सहयोग की भूमिका भी बड़ा महत्त्व रखती है। अतः साधक को भीतर के आवेग और कालुष्य को मिटाकर संलेखनाधारक को उत्तम धर्मात्माओं की सहायता लेनी चाहिए, क्योंकि साधर्मी तथा गुरु आदि की सहायता से अशुभ कर्म या अन्यान्य तत्त्व विघ्न उत्पन्न नहीं कर पाते। साधक को चाहिए कि व्रत के अतिचारों (दोषों) को साधर्मिकों अथवा आचार्य के सम्मुख प्रकट करके निःशल्य होकर प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि विधियों से दोषों का शोधन करें, क्योंकि ज्ञात दोषों का प्रायश्चित्त और अज्ञात दोषों की आलोचना करने वाला निर्भार (निःशल्य) हो जाता है। संलेखना–धारक अपने जीवन में किए, कराए और अनुमोदित (कृत, कारित और अनुमोदन से) समस्त हिंसादि पापों की निश्छल भाव से आलोचना (खेल–प्रकाशन) करें तथा मृत्युपर्यन्त महाव्रतों का अपने में पुनरारोपण करें। इसके साथ ही शोक, भय, खेद, ग्लानि और आकुलता को भी छोड़ दे तथा बल एवं उत्साह को जागृत करके अमृतोपम आगम वचनों द्वारा मन को प्रसन्न रखे। संलेखना धारण के सुअवसर की प्राप्ति बड़े सौभाग्य का सूचक, अपूर्व दुर्लभ अवसर है। इससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। संलेखना धारक साधक इससे अपने भावी पर्याय को वर्तमान जीर्ण–शीर्ण नश्वर पर्याय से अधिक सुख, शांत, निर्विकार एवं उन्नत बनाने का सफल पुरुषार्थ करता है। नश्वर से शाश्वत वस्तु का लाभ हो तो कौन विवेकी पुरुष उसे छोड़ने को तैयार नहीं होगा? अतएव संलेखना धारकों को निम्नलिखित पांच दोषों से स्वयं को बचाना चाहिए–

1. जीवन की आशंसा, 2. मरण की आशंसा, 3. मित्र के प्रति अनुराग, 4. भुक्त भोगों की स्मृति, 5. आगामी भव में अच्छे भोगों की प्राप्ति की कामना।[13] संलेखना काल में इन पांच विषयों की आकांक्षा कभी नहीं करनी चाहिए। इन दोषों के चिन्तन से संलेखना में भी गति बिगड़ सकती है, अतः साधक बड़ी सावधानीपूर्वक इनसे बचते हुए आत्मध्यान में लीन रहे। आचार्य समन्तभद्र ने इसी सम्बन्ध में आगे कहा है कि संलेखनाधारक को सबसे पहले इष्ट वस्तुओं से राग, अनिष्ट वस्तुओं से द्वेष, स्त्रीपुत्रादि प्रियजनों से ममत्व और धनादि में स्वामिभक्त की बुद्धि को छोड़कर पवित्र–मन होना चाहिए। उसके बाद अपने परिवार और अपने से संबंधित व्यक्तियों के प्रति जीवन में हुए अपराधों के लिए प्रियवचन बोलकर सबसे क्षमायाचना करके और दूसरों को भी क्षमा करके, अपने अंतःकरण को निष्कषाय बनाना चाहिए। सभी से क्षमायाचना करना तथा स्वयं भी मन, वचन और कायपूर्वक सबको क्षमा कर देना, आत्मोदय की दृष्टि से उत्तमोत्तम कार्य है। अंत समय में क्षमा करने वाला संसार से पार पहुंच जाता है और वैर–विरोध रखने वाला अर्थात् क्षमाधर्म को न अपनाने वाला जीव अनंत संसारी होता है।

संलेखना का फल

आचार्य समन्तभद्र संलेखना का फल बतलाते हुये लिखते हैं–''उत्तम संलेखना करने वाला धर्म रूपी अमृत का पान करने के कारण समस्त दुःखों से रहित होता हुआ निःश्रेयस् और अभ्युदय के अपरिमित सुखों को प्राप्त करता है।'' पंडित आशाधरजी के शब्दों में–जिस महापुरुष ने संसार परंपरा के नाशक समाधि मरण को धारण किया है, उसने धर्म रूपी महान् निधि को परभव में जाने के लिये साथ ले लिया है। जिससे वह उसी तरह सुखी रहता है जिस प्रकार एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाने वाला व्यक्ति पास में पर्याप्त पाथेय रखने पर निराकुल रहता है। इस जीव ने अनंत मरण किया है किन्तु समाधि–मरण कभी नहीं किया। वह सौभाग्य का महान् सूचक है। समाधि–मरण और सकाम मरण की तीर्थंकरों ने प्रशंसा की है। समाधि–मरण करने वाला महान् आत्मनिश्चय से संसार रूपी पिंजरे को तोड़ देता है, फिर उसे चिरकाल तक संसार के बंधन में नहीं रहना पड़ता है।

[13] आचार्य उमास्वाति, तत्त्वार्थसूत्र, 7/32.

आचार्य समन्तभद्र ने रत्नखण्ड श्रावकाचार में यहां तक कहा है–

तप्तस्य तपlश्pापि पालितस्य व्रतस्य च।

पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना।।[14]

समस्त श्रुताभ्यास, तपश्चर्या और व्रताचरण की सार्थकता तभी है जब मुमुक्षु श्रावक अथवा साधु विवेक जाग्रत हो जाने पर संलेखना या समाधि–मरणपूर्वक शरीर त्याग करता है। जो आत्म विशुद्धि अनेक प्रकार के तपादि से होती है, वह अन्त समय में मात्र समाधिपूर्वक शरीर त्यागने से ही प्राप्त हो जाती है।

संलेखना मन की उच्चतम आध्यात्मिक दशा का सूचक है। संलेखना जीवन की अंतिम आवश्यक साधना है। वह जीवन मंदिर का सुन्दर कलश है। अतः संलेखना मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की कला सिखाती है। वह जीवन–शुद्धि और मरण–शुद्धि की एक प्रक्रिया है। जिस साधक ने मदन के मद को गला दिया है, जो परिग्रह पंक से मुक्त हो चुका है। सदा सर्वदा आत्म–चिंतन में लीन रहता है, वही व्यक्ति उस मार्ग को अपनाता है। संलेखना में सामान्य मनोबल वाला साधक, विशिष्ट मनोबल प्राप्त करता है। जीवन की संध्यावेला में जब उसे मृत्यु सामने खड़ी दिखाई देती है, वह निर्भय होकर उस मृत्यु को स्वीकार करना चाहता है। उनकी स्वीकृति में अपूर्व प्रसन्नता होती है। वह सोचता है कि यह आत्मा अनन्त काल से कर्मजाल में फंसी हुई है। उस जाल को तोड़ने का मुझे अपूर्व अवसर मिला है। वह स्वतन्त्र होने के लिए, आत्मिक आनन्द को प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से शरीर को त्यागता है। अब कोरोना व्याधिग्रस्त व्यक्ति किन परिस्थिति प्रबन्धन के सूत्रों को अपनाकर अपने आत्म–विश्वास को कायम रखते हुए साहस के साथ सामना कर सके, उन पर प्रकाश डाला जा रहा है।

जैन दृष्टि में कोरोना परिस्थिति प्रबन्धन–सूत्र

जैन जीवन शैली एवं जैन मरण शैली दोनों का अविनाभाव संबंध है। इस कठिन दौर में कोरोना महामारी की विभीषिका से निपटने हेतु सर्वप्रथम परिस्थिति–प्रबन्धन (Situation Management) के जो सूत्र जैनाचार्यों ने हमें प्रेषित किया है उसके प्रति जन–जागृति पैदा करने की आवश्यकता है। यदि हम स्वयं को कोरोना संक्रमित पाएं तो हमें सर्वप्रथम आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया अपनानी चाहिए तथा जैन परंपरा द्वारा निर्दिष्ट परिस्थिति प्रबन्धन के सूत्रों का अनुपालन करना चाहिए, जैसे–

1. सर्वप्रथम अपने आत्मवीर्य पर अटूट विश्वास रखें। जैन दर्शनानुसार हर आत्मा अनन्त शक्ति संपन्न है–इस तात्त्विक तथ्य की अनुभूति करें एवं निराश न हो। 'ऊँ अनन्तवीर्येभ्यों नमः'– इस मंत्र जप का प्रयोग कर आत्मवीर्य को जागृत करें।[15]
2. 'णत्थि कालस्स णागमो'[16] अर्थात् मृत्यु के लिए कोई भी समय अनवसर नहीं हैं अर्थात् मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है। इस आचारांग सूत्र की स्मृति करें एवं संसार की नश्वरता का यथार्थ बोध करें।[17]
3. मृत्यु से डरे बिना तटस्थ भाव अथवा माध्यस्थ भावना (अनुप्रेक्षा) से अपनी आत्मा को भावित करें ताकि कोरोना महामारी आप पर हावी न हो।[18]
4. अरिहंत–सिद्ध–आचार्य एवं केवली प्रज्ञप्त धर्म की शरण को स्वीकार कर संपूर्णतया निश्चिन्त हो जाएं। अपनी जीवन की बागडोर को चतुःशरण में समर्पित कर आध्यात्मिक ऑक्सिजन से आयुष्य कर्म को शान्त भाव से भोगे।[19]
5. भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट 73 प्रकार के प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध सम्यक्त्व–पराक्रम के सूत्रों का अनुपालन करना चाहिए। इनमें क्षमापना के अनुपालन से परम आह्लाद् का अनुभव

[14] आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 7/16.

[15] आचार्य महाप्रज्ञ–मंत्रः एक समाधान, लाडनूं : जैन विश्व भारती, 2014, पृ.77.

[16] आचारांग सूत्र, 1/2/62.

[17] चत्तारि संरण पवज्जामि। अरहंते सरणं पवज्जामि। सिद्धे सरणं पवज्जामि। साहू सरणं पवज्जामि। केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।
(ज्ञानार्णव 38/57)

[18] रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताऽभावो माध्यस्थम्। (तत्त्वार्थवार्तिक 7/11)

[19] ज्ञानार्णव, 38/57.

होता है। जैसे ही हम सभी जीवों के प्रति मैत्री भावना करते हैं, सभी की शुभकामना परोक्ष रूप से हमको प्राप्त होती है जो औषधीय उपचार से भी अधिक कार्य करता है।[20]

6. सभी स्वजन, मित्रों एवं सम्बन्धीजनों के प्रति राग–द्वेष की गांठ से मुक्त होकर समस्त प्राणियों के प्रति समभाव की स्थिति के लिए सावद्ययोग अर्थात् पापकारी प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर सामायिक का अभ्यास करना चाहिए।[21]
7. किसी भी प्राणी के प्रति रागात्मक एवं द्वेषात्मक भाव को मैत्री की अनुप्रेक्षा द्वारा निर्मूल कर लें। मैत्री भावना से आत्मा को भावित कर कषाय को कृश कर क्रमिक आत्मिक विकास करें। क्योंकि ये रागादि भाव मन को मूढ़ करते हैं, भ्रमित करते हैं, कभी भय उत्पन्न करते हैं तो कभी शंकित करते हैं। अतः इनको निर्मूल करना आवश्यक है।[22]
8. इस समय संपूर्ण जीवन में स्वकृत, सुकृत एवं दुष्कृत की आलोचना स्वतः करें अथवा सौभाग्य से किसी चारित्रात्मा का योग प्राप्त हो तो उनके समक्ष बालकवत् अपने अतीतकालीन पापों का प्रायश्चित्त करें। दूसरे शब्दों में संपूर्ण जीवन की प्रतिक्रमण कर आत्मा का व्युत्सर्ग करें।[23]
9. यह सर्वविदित है कि इस बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति के पास जाना निषिद्ध होता है, स्पर्श भी नहीं किया जा सकता, उनसे बातचीत भी संभव नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में रोगग्रस्त व्यक्ति एकत्व भावना एवं अन्यत्व भावना से अपनी आत्मा को भावित करें कि मैं अकेला हूं। मेरा कोई नहीं। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है–इन दोनों भावनाओं का प्रशिक्षण एवं प्रयोगविधि के सम्यक् बोध की नितान्त अपेक्षा है। ताकि व्यक्ति आर्त्त–रौद्र ध्यान में न जाय, धर्मध्यान के सूत्रों द्वारा धर्म में स्थित हो सके। यदि जीवन–रक्षा के समस्त प्रयत्नों के बावजूद भी मृत्यु आसन्न लगे तो धैर्य एवं समता से समाधिपूर्ण एवं सम्मानपूर्ण संलेखना संथारा पूर्वक मृत्यु का वरण करें। जैन कर्मसिद्धान्त के अनुसार कर्म कर्ता का ही अनुगमन करता है, व्यक्ति के शुभाशुभ कर्म ही उसके साथ जाते हैं। कोई भी व्यक्ति कृत कर्म के फलोपभोग में संविभागी नहीं बन सकता।[24] अतः आत्मकर्तृत्त्ववाद के सिद्धांत को हृदयंगम करके कोरोनाग्रस्त व्यक्ति को परदोषारोपण को छोड़कर आत्म–चिंतन करना चाहिए। जीवन भर में जो भी शुभाशुभ कार्य किए हैं, रागद्वेष के वशीभूत होकर जिस किसी भी प्राणी को शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक कष्ट दिए हैं। उन सभी की स्मृत्ति कर अशुभ भावों से अपनी आत्मा को हटाएं एवं वर्तमान परिस्थिति का जिम्मेदार किसी अन्य व्यक्ति को न मानकर, सकारात्मक सोच के साथ भावशुद्धि के द्वारा कर्मशोधन करते हुए समाधि मरण का वरण कर समत्व की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

---

[20] उत्तराध्ययन सूत्र, 29/18।

[21] वही 29/9।

[22] क्वचिन्मूढं क्वचिद्भीतं क्वचिद्व्रतम्। शंकितं च क्वचित्क्लिष्टं रागाद्यैः क्रियते मनः।। (ज्ञानार्णव 23/7)

[23] उत्तराध्ययन सूत्र 29/5–13।

[24] न तस्स दुःखं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बन्धवा। एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।। (वही 13/23)

उपसंहारः

इस प्रकार जैन परंपरा में गृहस्थ आचार संहिता में प्ररूपित शाकाहार अहिंसक प्रधान जीवन शैली, कोरोना व्याधि के निवारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शाकाहार सेवन जहां मानव के रोग–प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है वहीं कोरोना वायरस जैसे विजातीय तत्त्वों का निष्कासन कर शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान करता है। इच्छापरिमाण व्रत के द्वारा स्वेच्छा से वैयक्तिक जीवन की असीमित आकाक्षांओं एवं प्रवृत्तियों को संयमित कर अर्जन के स्रोत, साधन एवं उसका समाज पर होने वाले दुष्परिणामों का गहराई से चिंतन–मनन, आलोडन विलोडन करने का इस कोरोना संकटकाल में पुनर्विचार का खुला वितान मिला है।

इस प्राकृतिक वैश्विक आपदा काल में इच्छासंयम द्वारा यात्रा–गमनागमन संयम, अनावश्यक हिंसा संयम द्वारा जहां प्रवृत्ति प्रधान जीवनशैली में निवृत्ति का अंकुश लगा है वहीं वायु, ध्वनि, जल प्रदूषण मुक्त हवा में शुद्ध ऑक्सिजन में श्वास लेने का एवं प्रकृत्ति के मूल सौन्दर्य को पुनर्जीवन मिला है। जैन आगम के अनुसार हाथों का संयम, पैरों का संयम, वाणी का संयम एवं समस्त इन्द्रियों के संयम से अनावश्यक हिंसा पर नियंत्रण हुआ है।[25] अनावश्यक मनोरंजन हेतु भ्रमण पर नियंत्रण होने से स्वतः वाहन जनित प्रदूषण को विराम मिला है। अस्तु वर्तमान कोरोना महामारी के परिप्रेक्ष्य में मानव, जैन जीवन शैली के सूत्रों को अपनाकर आगमोक्त वाणी को आधार बनाकर, अपने दृष्टिकोण को अणुव्रत प्रधान जीवनशैली एवं मरणशैली के अनुरूप ढालकर अपनाकर प्रशस्त, प्रशान्त, प्रसन्नमना रहकर कोरोना परिस्थिति प्रबंधन सूत्रों को अपना कर विवेकपूर्वक आत्मोत्थान के साथ–साथ समाजोत्थान करते हुए विनाश शून्य विकास द्वारा वैश्विक शांति की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

[25] दशवैकालिक सूत्र, 10/15

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचारांगसूत्र, संपा, मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2012।
2. उत्तराध्ययनसूत्र, संपा. मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2010।
3. उपासकदशांगसूत्र, संपा., मधुकर मुनि, श्री आगम, प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1980।
4. दशवैकालिकसूत्र, संपा. मधुकर मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2013।
5. प्रश्नव्याकरणसूत्र, संपा. मधुकर, मुनि, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2002।
6. आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव, अनुवादक–पन्नालाल बाकलीवाल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगास, 1998।
7. आचार्य हेमचन्द्र, योगशास्त्र, अनुवादक–पद्मविजय महाराज, श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ, 1990।
8. आचार्य उमास्वाति का तत्त्वार्थसूत्र, संपा. जे. एल. जैनी, दिल्ली : बेरिस्टर चम्पतराय जैन ट्रस्ट, 1956.
9. तत्त्वार्थवार्तिक (राजवार्तिक): द्वितीय भाग, सम्पा. महेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2001।
10. आचार्य तुलसी, श्रावक संबोध, नई दिल्ली : आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, 2016।
11. आचार्य महाप्रज्ञ, पहचान जैन श्रावक की, लाडनूं: जैन विश्व भारती, 2014।
12. Y. Hasih, *A Critical History of Western Philosophy*, Delhi, Motilal Banarasid das, 1994.
13. Acharya Kundakunda. *Barasa Anuvkkha*. Tran. Nathuram Premi (Hindi) & Anish Shah (Eng.). Mumbai : Hindi Granth Karlay, 2019.
14. Samani Shashi Prajna, *Social Implicaion fo Jain Doctrines*, Ladnun : Jain Vishva Bharati, 2020.
15. Acharya Mahapragya, *Who is a Jain Shravak?*, Ladnun : Jain Vishva Bharati, 2019.